निष्कर्ष-बैगा जनजाति मध्य भारत की एक अत्यंत प्राचीन और विशिष्ट पिछड़ी जनजाति (PVTG) है, जो स्वयं को 'माटी-पुत्र' और पृथ्वी का पहला मानव मानती है। निष्कर्षतः, यह समुदाय वर्तमान में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है।

प्रकृति के साथ अटूट संबंध और पारंपरिक ज्ञान: बैगाओं की पूरी जीवनशैली वनों और प्रकृति के साथ सहजीविता पर टिकी है। उनका पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine) और 'बेवर' (स्थानांतरित खेती) के प्रति उनका धार्मिक दृष्टिकोण उन्हें अन्य समुदायों से अलग करता है। स्रोतों के अनुसार, वे मिट्टी के रहस्यों के विशेषज्ञ माने जाते हैं।

आधुनिकीकरण और बदलता जीवन प्रतिमान: विकास कार्यक्रमों, सड़क संपर्कों और शिक्षा के प्रसार के कारण बैगा समुदाय धीरे-धीरे मुख्यधारा से जुड़ रहा है। वे अब खानाबदोश जीवन छोड़कर स्थायी कृषि अपना रहे हैं और आधुनिक उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं। नई पीढ़ी में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ी है और कुछ युवा नौकरियों में भी आ रहे हैं।

सांस्कृतिक पहचान का संकट: आधुनिकीकरण के सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ उनकी विशिष्ट पहचान को गंभीर खतरा पैदा हो गया है। बैगा पुरुषों का पारंपरिक 'जूड़ा' और महिलाओं का कष्टदायी 'गोदना' अब नई पीढ़ी के बीच लुप्त हो रहा है। सबसे चिंताजनक उनकी 'बैगानी' बोली का लुप्त होना है, क्योंकि युवा अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी को प्राथमिकता दे रहे हैं। चुनौतियां और भविष्य की आवश्यकता: यद्यपि विकास हुआ है, लेकिन बैगा समुदाय अभी भी गरीबी, ऋणग्रस्तता, उच्च स्कूल ड्रॉपआउट दर और कुपोषण जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। इसके अतिरिक्त, महुआ शराब का अत्यधिक सेवन उनके सामाजिक-आर्थिक पतन का एक बड़ा कारण बना हुआ है।

अंतिम विचार: बैगाओं का भविष्य उनकी पारंपरिक विरासत और आधुनिक प्रगति के बीच संतुलन पर निर्भर करता है। स्रोतों का सुझाव है कि उनके औषधीय ज्ञान को बायोपायरेसी से बचाने के लिए दस्तावेजीकरण करना और उनकी कला व भाषा को संरक्षित करने के लिए जनजाति-विशिष्ट विकास दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य है। उन्हें अपनी जड़ों से काटे बिना विकास की मुख्यधारा में शामिल करना ही उनके अस्तित्व की रक्षा का एकमात्र मार्ग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एलविन, वेरियर. (1986). द बैगा (The Baiga). ज्ञान पब्लिशिंग हाउस (मूल प्रकाशन 1932, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).
2. कुमार, ए., एवं भारद्वाज, पी. (2020). द स्टडी ऑफ एलुसिडेशन ऑफ बैगा ट्राइब्स ऑफ मध्य प्रदेश. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल स्टडीज, 7(12), 22-25.
3. चौरसिया, विजय. (2004). प्रकृति पुत्र बैगा. मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
4. तिवारी, कृष्णा. (2019). बैगा जनजाति के उत्पत्ति की अवधारणा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, 5.
5. निरगुणे, वसंत. (2011). बैगा (मोनोग्राफ). मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद.
6. प्रसाद, डी. वी. (2016). एनवायरनमेंटल चेंज एंड रिसोर्स मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस अमंग द बैगा ऑफ मेकल हिल्स ऑफ अमरकंटक रीजन. मेकल इनसाइट्स, 4(1).
7. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़. (2024). कक्षा-1 बैगानी-हिंदी पाठ्यपुस्तक (सत्र 2024-25).
8. राउ, बी. के. (1977). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
9. मजूमदार, डी. एन. (1958). द ईस्टर्न एंथ्रोपोलॉजिस्ट.
10. यादव, तन्वी. (2020). विच हंटिंग. ए ग्लोबल जर्नल ऑन सोशल एक्सक्लूजन, 1(2), 169-182.
11. उमा देवी, बी. वी. (2004). डिपेंडेंसी ऑन फॉरेस्ट्स फॉर लाइवलीहुड एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन एनवायरनमेंट. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (LBSNAA).
12. फक्स, स्टीफन. (2018). द बैगा: अंडरस्टैंडिंग ऑफ अल्टीमेट रियलिटी एंड मीनिंग. मैकमिलन एंड कंपनी.
13. महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय. (2004). विज्ञापन एवं विक्रय प्रबंध (Advertising & Sales Management). दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, रोहतक.
14. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA). (2024). संस्कृति एवं भाषा संरक्षण पुस्तक सूची.

'विष्णु पुराण में भारतबोध'

डॉ. अनिल कुमार सिंह
फ्लैट नंबर - 47सी, नंदन अपार्टमेंट्स, बीए ब्लॉक, के.सी. गोयल मार्ग, फेज-1, अशोक विहार, नई दिल्ली - 110052

'है बात कुछ ऐसी कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' इकबाल की इन पंक्तियों में जिस बात की ओर संकेत किया गया है उसका स्पष्ट उत्तर हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'विरुद्धों के सामंजस्य' में मिल जाता है यानी सदियों से इस देश की प्रवृत्ति रही है कि वह एक-दूसरे के विरोधी विचार को भी अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखती है यही कारण रहा कि जितने भी आक्रमणकारी इस देश में आए उनमें से ज्यादातर इसी भूमि में रच- बसकर भारतीय हो गये। भारत की यह प्रवृत्ति वैदिक काल से ही चली आ रही है कि जहाँ वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था को कठोरता से लागू करने की बात कही गई है वही पुराणों तक आते-आते जो वेदों में उपेक्षित थे उन्हें श्रेष्ठ भी घोषित किया जाता है। स्त्री और दलित जिन्हें वेदों में हाशिए पर रखा गया था उन्हें **'विष्णु पुराण'** ने स-तर्क श्रेष्ठता का दर्जा प्रदान किया, इसलिए अनायास ही इस दौर में विष्णु पुरण की प्रासंगिकता बढ़ गई है। 'विष्णु पुराण' का रचना काल क्या है इस पर विद्वान एक-दूसरे से सहमत तो नहीं दिखाई पड़ते लेकिन उपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर कुछ विद्वानों ने अवश्य ही उसका रचनाकाल निर्धारित करने की कोशिश की है। जिसमें कुछ उपलब्ध जानकारी निम्नलिखित है-

रामचन्द्र दीक्षित (1951) :- 700-300 ईसा पूर्व
विन्सेंट स्मिथ (1908) :- 400-300 ईसा पूर्व
मारिज विण्टरनित्ज (1932) :- सभ्यवतः प्रथम शताब्दी का आरंभिक काल
राजेन्द्र चन्द्र हजारा (1940) :- 275–325 ई.
वेंडी डोनियर (1988) :- 450 ई.
चिन्तामण विनायक वैद्य (1925) :- 9वीं शताब्दी*

ये कुछ प्रमुख विद्वानों ने विष्णु पुराण के रचना काल का निर्धारण किया है। किसी भी रचना का रचनाकाल महत्वपूर्ण तो है परन्तु इससे उसके भीतर लिखे गये भाव और विचार का महत्व कम नहीं होता। इसी कारण से विष्णु पुराण एक बार पुनः चर्चा के केन्द्र में है।

भारत में कुछ विषय ऐसे हैं जिस पर बात करते हुए हमेशा लोग कई खेमों में बंटते दिखाई देते हैं, जिसमें एक खेमा – पाश्चात्य प्रभाव साबित करता है तो दूसरा खेमा प्राचीन भारतीय परम्परा से जोड़कर उसे विशुद्ध भारतीय साबित करने की कोशिश करता है। किसी भी वैसे विषय पर वाद-विवाद करना वैसे तो विकासशीलता की निशानी ही है। यह होते भी रहना चाहिए क्योंकि कहते हैं ना कि किसी विषय पर मिल-बैठकर बात करने से समाधान निकल ही जाता है। हमारे देश में वैसे भी शास्त्रार्थ की परम्परा पौराणिक काल से ही चली आ रही है जिसका कुछ स्वरूप आज भी खाप - पंचायत में दिख भी जाती है जहाँ अपने समाज या गाँव की हर छोटी-छोटी समस्या का हल खोजने के लिए अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाते बल्कि पंचायत के स्तर पर ही मिल बैठकर ऐसी समस्याओं का हल खोज लिया जाता है। पर कुछ देश व्यापी मुद्दे होते हैं जिनका हल पंचायत स्तर पर ढूंढ़ पाना संभव नहीं है। जिसमें देश की प्राचीनता, स्त्री और दलित विमर्श आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिस पर यह देश कभी-भी उद्वेलित हो जाता है। विषय इतना संवेदनशील है कि सामान्य तौर पर लोग ऐसे विषयों पर बात करने से लगभग परहेज ही करते हैं। जिनको इन्हीं विषयों को केन्द्र में रखकर अपनी राजनीतिक रोटी सेकनी है वह इन विषयों पर उन्हीं पक्षों पर जोर देते नजर आते हैं

जिससे उनका राजनीतिक हित सधता हो। और जब सामाजिक और धार्मिक विषय राजनीतज्ञों के हथियार बनने लगते हैं तो आम जनता ऐसे विषयों से खुद को अलग ही कर लेती है। जब हम देश की प्राचीनता का सवाल उठाते हैं तब हम पाते हैं कि इस विषय पर भी देश का बुद्धिजीवी समाज दो स्पष्ट अलग-अलग खेमों में खड़ा है। एक खेमा इस देश को सिन्धु घाटी सभ्यता से जोड़कर अपने को 5000 साल पुराना बताता है तो दूसरा खेमा खुद को ब्रह्मा जी की संतति घोषित करते हुए खुद को लाखों साल पुराना घोषित है दोनों खेमों में इतने वर्षों का अंतर है कि इनका कभी एक-दूसरे से सहमत होने की कोई संभावना भी दिखाई नहीं पड़ती। इसी प्रकार की समस्या दलित और स्त्री विमर्श को लेकर भी सामने आती है। जब दलित समाज के प्रति संवेदनशीलता का विषय आता है तब कुछ लोग इसे बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जी से भी जोड़ देते हैं और कुछ पाश्चात्य प्रभाव से। साथ ही इस विषय पर बात करते हुए अक्सर लोग तमाम भारतीय वांग्मय जैसे- **वेद, पुराण, उपनिषद्, स्मृति, ब्रह्माण ग्रन्थ** आदि एक सिरे से दलित विरोधी घोषित कर देते हैं शायद बिना पढ़े ही सिर्फ सुनी-सुनाई अर्धसत्य बातों और तथ्यों के आधार पर ही ऐसा फैसला सुना देते हैं। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज उस समुदाय के लोगों में एक सामान्य मनः स्थिति दिखाई पड़ने लगी है कि भारत वर्ष में लिखे गये तमाम वाग्मय दलित विरोधी हैं और इनका निषेध किया जाना चाहिए। यही कारण है कि समय-समय पर इन साहित्यों का विरोध करते हुए उन्हें फाड़ने और जलाये जाने की खबरें भी समाचार-पत्रों की सुर्खिया बनती रहती हैं।

जो कि एक चिंताजनक प्रवृति है। अगर इसी तरह की प्रवृत्ति बढ़ती रही और हर वर्ग और समुदाय लोग एक- दूसरे समुदायों के धार्मिक ग्रन्थों को फाड़ते और जलाते रहे तो एक दिन देश में अराजकता फैल जाएगी जो किसी भी समुदाय के लिए ठीक बात नहीं होगी, क्योंकि इस देश को ऊँचाईयों तक पहुँचाने में सभी समुदायों के अपना-अपना योगदान दिया है। देश का इस शिखर तक पहुँचाने का श्रेय कोई एक समुदाय नहीं ले सकता इसलिए सभी देशवासियों के लिए यह उचित होगा कि हम एक-दूसरे की भावनाओं और भावनात्मक प्रतीकों का सम्मान करें। किसी धर्म -ग्रन्थ को जला देने से उसमें लिखी बातें खत्म नहीं हो जाती क्योंकि इतिहास ऐसी अनेकों घटनाओं का साक्षी है जिसमें हमारे धर्म-ग्रन्थों को क्या पुरी-पुरी पुस्तकालय और विश्वविद्यालय को ही जला दिया गया परन्तु क्या उससे भारत की ज्ञान परम्परा समाप्त हो गई? परम्परायें लोगों के दिलों में जिंदा रहती हैं इसलिए पुस्तक जलाना या फाड़ना किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके विपरीत अगर हम धार्मिक दृष्टि को छोड़कर अगर दूसरे समुदाय की पुस्तकों को अध्ययन करने की कोशिश करें तब भी शायद कुछ समाधान हम पा सकते हैं। क्योंकि ज्यादातर पुस्तकें पूर्वाग्रह से मुक्त होकर ही लिखी जाती हैं।

आज हम जिस धार्मिक ग्रन्थ को केन्द्र में रखकर इस विश्लेषण करेंगे वह है **'विष्णु पुराण'**। भारत में 18 पुराण लिखे जाने की जानकारी ज्ञात हुई है उसी में यह विष्णु पुराण भी शामिल है। इसके लिखे जाने का ठीक-ठीक समय का ज्ञात तो नहीं हो पाता लेकिन इसके अध्ययन से इस बात की जानकारी अवश्य ही प्राप्त हो जाती है कि अब तक हम ऐसी पुस्तकों को दलित और स्त्री विरोधी घोषित कर उन्हें खारिज कर रहे थे वह बात झठी साबित होती हैं। वैसे तो यह एक धार्मिक ग्रन्थ हैं परन्तु इस भारत देश की महिमा और दलित और स्त्री समस्या पर बहुत स्पष्ट रूप से बात रखी गई है। और यह मुद्दे तब से ज्यादा आज प्रासंगिक लगते हैं। इससे पता चलता है कि यह पुस्तक जब भी लिखी गई हो और जिसने भी लिखी हो वह तो साधारण मनुष्य नहीं बल्कि कोई भविष्यवेता ही होंगे जिन्होंने हजारों वर्ष पहले भी ऐसे संवेदनशील विषयों पर अपनी लेखनी चलाई होगी और देश को संदेश दिया होगा जिसका महत्व हमें आज दिखाई देता है।

पहले हम **विष्णु पुराण** के **द्वितीय अंश** के **दूसरे अध्याय** में वर्णित भूगोल विवरण पर प्रकाश डालेंगे। जिसमें ऋषि मैत्रेय का प्रश्न और ऋषि श्रीपराशर का उत्तर शैली में पूरी पृथ्वी के भूगोल का विस्तृत विवरण किया गया है। अपने प्रश्न में ऋषि मैत्रोय जी पृथ्वीमंडल पर जितने भी **सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और देवता** आदि की **पुरियाँ** है उसका यथावत वर्णन करने का आग्रह करते हैं। जिसका उत्तर देते हुए ऋषि श्री पराशर जी कहते हैं- **हे मैत्रेय। सुनो, मैं इन सब बातों का संक्षेप में ही वर्णन करूँगा क्योंकि विस्तार से वर्णन करने में तो सौ वर्ष का समय भी कम पड़ेगा।** अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए श्री पराशर जी कहते हैं-

जम्बूप्लक्षावयौ द्वीप शाल्मलश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुस्करश्चैव सप्तमः।5

द्वितीय अंश - दूसरा अध्याय

एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः सम्रग् 16

अर्थात्– जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्कर- ये सातों द्वीप चारों ओर से खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दुग्ध, और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः।। 7
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छयः।। 8
प्रविष्टि षोऽशाद्यस्ताद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः।।
मूले षोऽशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः।।9
भूप पद्यस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः।।10

अर्थात्- जम्बू द्वीप इन सबके मध्य स्थित है और उसके भी बीचों-बीच में सुवर्णमिय सुमेरु पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और नीचे की ओर यह सोलह हजार योजन पृथ्वी में घुसा हुआ है। इसका विस्तार उपरी भाग में बत्तीस हजार योजन है तथा नीचे केवल सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथ्वी रूप कमल की कर्णिका (कोश) के समान है।

हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः।।11

इसके दक्षिण में हिमवान, हेमकूट और निषध तथा उत्तर में नील, श्वेत और श्रृंगी नामक वर्ष पर्वत हैं। (जो भिन्न-भिन्न वर्षों का विभाग करते हैं।)

भारतं प्रथमं वर्ष ततः किम्पुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्ष तथैवान्यन्मेरो दक्षिणतो द्विज।। 13
रम्यकं चोत्तरं वर्ष तस्यैवानु हिरणयम्।
उत्तराः करवश्चैव यथा वै भारतं तथा।।14

अर्थात्– मेरु पर्वत के दक्षिण की ओर पहला भारतवर्ष है दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरि वर्ष है। उतर की ओर प्रथम रम्यक, फिर हिरण्यमय और तदनंत्तरं उत्तरकुरुवर्ष है जो (द्वीपमंडल की सीमा होने के कारण) भारत वर्ष के समान है।

इस अध्याय में भारत वर्ष के आसपास के द्वीपों, समुद्र, नदियों, पर्वतों आदि के लम्बाई चौड़ाई का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'विष्णु पुराण' की द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय में भारत वर्ष का विस्तृमत विवरण भी हमें मिलता है। जिसमें भारत वर्ष की भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था की विस्तारपूर्वक वर्णन भी किया गया है। तथा यह भी बताया है कि पूरी पृथ्वी पर निवास करने के लिए भारत वर्ष से उचित कोई स्थान नहीं है। यहाँ निवास करने वाले व्यक्तियों पर हमेशा ईश्वर की कृपा बनी रहती है जिसके कारण उनका जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है। और इसके परिणाम स्वरूप यहाँ के निवासी निरंतर पूजा-पाठ आदि पवित्र कार्यों में लगे रहते हैं और पूरी

पृथ्वी के कल्याण की कामना भी करते रहते हैं।

उतरं यप्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम्।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्नतिः।।1

द्वितीय अंश - तीसरा अध्याय

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
कर्म भूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गच्छताम्।।2
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्चय पारिमात्राश्च सप्तात्र कुलपर्वताः।।3

अर्थात् - जो समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, वह देश भारत वर्ष कहलाता है। उसमें भरत की सन्तान बसी हुई है। इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करने वालों की कर्म भूमि है। इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्धय और परित्राण ये सात कुलपर्वत है।

योजनानां सहस्रं तु द्वीपोज्यं दक्षिणोत्तरात।
पूर्वे किराता यास्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।।8
ब्रह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्य भागशः।
इऽयायुद्यवणिज्या द्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः।।9

अर्थात्- यह द्वीप उत्तर में दक्षिण तक सहस्र योजन है। इसके पूर्वी भाग में किरात लोग और पश्चिम में यवन बसे हुए हैं। तथा यज्ञ युद्ध और व्यापार आदि अपने-अपने कर्मों की व्यवस्था के अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण निवास करते हैं।

इससे आगे भी तीसरे अध्याय में सभी नदियों पर्वत्तों, समुद्रों आदि की विस्तार पूर्वक वर्णन हमें मिलता है सांस्कृतिक और धार्मिक कृत्यों की विस्तार से चर्चा भी हमें इस अध्याय में प्राप्त होता है। 'विष्णु पुराण' में इस वर्णन के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत की प्राचीनता को विवाद का विषय बनाना व्यर्थ और राजनीति मुद्दा है भारत का हजारों वर्षों का इतिहास इससे पौराणिक वाग्मय में सुरक्षित है। अब आगे हम दलित और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर चर्चा करेंगे जिसका स्वरूप हमें विष्णु पुराण के **षष्ठ अंश** के **दूसरे अध्याय** में मिलता है। ऋषि-मुनियों का एक दल महर्षि व्यास के पास यह जिज्ञासा लेकर पहुँचा कि किस समय में थोड़ा सा पुण्य भी महान फल देता और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं। जब ऋषि - दल यहाँ पहुँचा तो महर्षि व्यास गंगा में स्थान कर रहे थे और गंगा में डुबकी लगाते हुए उनके मुख से **'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है। स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन हैं?** यह शब्द निकल रहे थे जिसे सुनकर उपस्थित ऋषि-दल आश्चर्य में पड़ गये और अपनी जिज्ञासा शांत करने हेतु उन्होंने व्यास से इसका रहस्य जानना चाहा कि गंगा स्नान के दौरान जो बाते आपके मुख से निकली उसका रहस्य हमें भी समझाइये उनका उत्तर देते हुए महर्षि व्यास कहते हैं-

व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्व द्विजातिभिः।
ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धमैः।।19

षष्ठ अंश - दूसरा अध्याय

वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम्।
पतनाय ततो भाव्यं तैस्तु संयमिभिस्सदा।।20
असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः।। 21

अर्थात्- द्विजातियों को पहले ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन के द्वारा विधि - पूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इससे भी व्यर्थ वार्तालाप व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतन के कारण होते हैं, इसलिए उन्हें सदा -संयमी रहना आवश्यक है। सभी कर्मों में अनुचित करने से उन्हें दोष लगता है। यहाँ तक कि भोजन और पानादि से वे अपने इच्छानुसार नहीं भोग सकते।

पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्मेषु वैयतः।
जयन्ति ते निजाँल्लोकान्वलेशेन महता द्विजाः।।22
द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्ततः।।23
भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वैयतः।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनामौ साध्वितीरितः।। 24

अर्थात्- क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण कार्यों में परतन्त्रता रहती है। हे द्विजगण ! इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेश से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु जिसे केवल (मन्त्रहीन) पाक-यज्ञ का अधिकार है वह शूद्र द्विजों की सेवा करने से ही सद्गीत प्राप्त कर लेता है, इसलिए वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। शूद्र को भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेय का कोई नियम नहीं है, इसलिए मैंने उसे साधु कहा है।

इस प्रकार विष्णु पुराण दलित जातियों को सभी प्रकार के नियमों से मुक्त घोषित करने के कारण उन्हें श्रेष्ठ साबित करता है। ऐसा मस्तमौला जीवन प्राप्त करना जिसमें किसी भी प्रकार के नियम का कोई बंधन नहीं है यह सिर्फ दलित समुदाय को प्राप्त है जिसके कारण उसका शरीर और मन पूरी तरह से बंधन मुक्त है इसी कारण महर्षि व्यास उन्हें कलियुग का श्रेष्ठ प्राणी घोषित करते हैं जिसका प्रमाण हमें विष्णु पुराण में दिखलाई पड़ता है। इसी वार्त्तालाप को आगे बढ़ाते हुए महर्षि ने स्त्रियों की श्रेष्ठता की बात को स्पष्ट किया है। जिसमें वे कहते हैं-

स्वधर्मस्याविरोधेन नरैलंब्धं धनं सदा।
प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि। 25
तस्यार्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः।
तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम्।।26
एवमन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात्।। 27

अर्थात्– पुरुषों को अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धन से ही सर्वदा सुपात्र को दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिए। इस द्रव्य के उपार्जन तथा रक्षण में महान क्लेश होता है और उसको अनुचित कार्य में लगाने से भी मनुष्यों को जो कष्ट भोगना पड़ता है, वह मालूम ही है। इस प्रकार के द्विज जनों पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायों से क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोकों को प्राप्त करते हैं।

योषिच्छुश्रूषणा द्धर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति-तत्सालोक्यं यतो द्विजाः।। 28
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः।। 29

अर्थात्– स्त्रियाँ तो तन-मन-वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषों के अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसीलिए मैंने तीसरी बार यह कहा था कि **'स्त्रियाँ साधु हैं'।**

स्वल्पेनहि प्रयत्नेन धर्मस्सिद्धयति वै कलौ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिता खिलकिल्बिषैः।।34
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परै द्विजसत्तमाः।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि।।35
ततस्त्रितयमप्येतन्मय धन्यतरं मतम्।
धर्मसम्पादने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु।। 36

अर्थात्- जिन पुरुषों ने गुणरूप जल से अपने समस्त दोष धो डाले हैं उनके थोड़े-से प्रयत्न से ही कलियुग में धर्म सिद्ध हो जाता है। शूद्रों को द्विज सेवा परायण होने से और स्त्रियों को पति की सेवा मात्र करने से ही अनायास धर्म की सिद्धि हो जाती है। इसीलिए मेरे विचार से ये तीनों धन्यतर है, क्योंकि सतयुग आदि अन्य तीनों युगों में भी द्विजातियों को

ही धर्म सम्पादन करने में महान् क्लेश उठाना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान समय में सबसे ज्यादा जो स्त्री और दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में रहता है तथा समय-समय विवाद में भी रहता है। उन्हीं दोनों समुदायों की चर्चा हजारों वर्ष पूर्व लिखें गये 'विष्णु पुराण' भी करता है। और साथ ही इस बात की घोषणा भी कर देता है कि 'कलियुग' में दलित और स्त्री जाति ही श्रेष्ठ रहेगी और सभी प्रकार के पापकर्मों और बंधनों से स्वतः मुक्त रहेंगी इनको अपनी मुक्ति के किसी बन्धन को तोड़ने या आन्दोलन करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि जिसके लिए किसी भी प्रकार के नियम का बंधन बनाया ही नहीं गया उन्हें भला तोड़ने की आवश्यकता ही क्या है ? भारतीय ज्ञान परम्परा प्रारम्भ से ही समृद्धशाली और कल्याणकारी रही हैं किन्तु सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने उस पूरी समृद्ध परम्परा को हाशिये पर डाल दिया था या उन्हें मिटाने की कोशिश की थी। वह परम्परा अब भी अंधेरो को हटाकर रौशनी देने में समर्थ है। यह ठीक है कि हमें दुनिया भर के साहित्य से कुछ न कुछ प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए लेकिन अपनी विरासत और परम्परा से आँखें मोड़कर नहीं। क्योंकि जिस भारतीय वाग्मय ने एक दौर में पूरी दुनिया को ज्ञान दिया था, जिसके कारण भारत को विश्वगुरु जैसी उपाधि प्राप्त थी तो क्या आज वही वाङ्मय पुनः ज्ञान का आधार नहीं बन सकता? आवश्यकता इस बात कि है कि भारतीय ज्ञान परम्परा से समस्त वाङ्मय को विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि युवा पीढ़ी बिना किसी भेदभाव के उसका अध्ययन कर सके और उस पर अपने विचार खुलकर प्रस्तुत कर सके। गलती यह होती है कि देश में कुछ लोग ही उसका प्रचार-प्रसार करते नजर आते हैं और धीरे-धीरे वे भी राजनीतिक मुद्दों का हिस्सा बन जाते हैं और ज्ञान परम्परा पुनः हाशिए पर चली जाती है, इसलिए अगर वह परम्परा पाठ्यक्रम का हिस्सा बनेगी तो सम्भवतः उस पर राजनीति कम होगी क्योंकि राजनीति में ज्ञान के विषयों के लिए ज्यादा अवकाश होता नहीं है और उसका सीधा फायदा देश के युवा पीढ़ी को मिल जायेगा। और इस भाव से नहीं कि हमें विश्वगुरु ही बनना है। पहले अपना घर तो रौशन कर लें तब चिराग बाहर जलाने का प्रयास करना होगा यानि पहले अपने मन के भीतर का अंधकार मिटाये तब संसार को प्रकाशवान बनाने का प्रयत्न करें। अन्धकार से प्रकाश की ओर मार्ग प्रशस्त करने का साधन है भारतीय ज्ञान परम्परा जिसका सम्मान करना हम लोगों को पहले सिखना होगा।

****

संत काव्य परंपरा में संघर्ष -चेतना एवं जीवन-मूल्य

डॉ जितेंद्र गौतम
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
पी एम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शिवपुरी

सारांश-मध्यकालीन भारतीय समाज में संत काव्य परंपरा ने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। यह शोध पत्र संत कवियों की रचनाओं में निहित संघर्ष-चेतना और जीवन-मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। कबीर, रैदास, दादू, नानक, मीरा आदि संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, धार्मिक आडंबर, रूढ़िवादिता और सामाजिक विषमता के विरुद्ध प्रखर संघर्ष किया। उनकी वाणी में मानवतावाद, समानता, सत्य, प्रेम, करुणा और आत्मसाक्षात्कार जैसे शाश्वत जीवन-मूल्यों की स्थापना मिलती है। यह शोध संतों के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक प्रतिरोध, धार्मिक सुधारवाद और नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में रेखांकित करता है। संत काव्य केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना का एक सशक्त माध्यम रहा है।

बीज शब्द: संत काव्य, संघर्ष-चेतना, जीवन-मूल्य, कबीर, समाजसुधार, धार्मिक आडंबर, मानवतावाद, समानता, भक्ति आंदोलन

प्रस्तावना-भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्यकाल एक विशेष महत्व रखता है, जहाँ भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा ने समाज को नवीन दिशा प्रदान की। चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य विकसित यह काव्यधारा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक आंदोलन नहीं थी, अपितु यह एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करती थी। तत्कालीन समाज अनेक विसंगतियों से ग्रस्त था। एक ओर जहाँ कर्मकांडों, आडंबरों और बाह्याचारों का बोलबाला था, वहीं दूसरी ओर जाति-व्यवस्था की कठोरता, छुआछूत, लिंग-भेद और धार्मिक कट्टरता ने समाज को विखंडित कर दिया था। इस्लामी शासन के प्रभाव और हिंदू-मुस्लिम संघर्ष ने सामाजिक तनाव को और गहरा किया था। ऐसे विषम परिवेश में संत कवियों ने अपनी वाणी से जनमानस को झकझोरा और एक नवीन जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया।

संत कवियों की विशेषता यह रही कि वे समाज के निचले तबकों से आए थे। कबीर जुलाहे थे, रैदास चर्मकार, सेना नाई, धन्ना जाट और पीपा राजपूत। इनकी सामाजिक पृष्ठभूमि ने इन्हें जीवन की कठोर वास्तविकताओं से परिचित कराया और इनके काव्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही। संत काव्य में संघर्ष-चेतना का स्वर प्रमुख है, जो समाज की विद्रूपताओं के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। संत साहित्य का महत्व इसलिए भी है कि इसने लोकभाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। संस्कृत और फारसी के वर्चस्व के युग में संतों ने सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी आदि लोकभाषाओं में अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त कीं, जिससे सामान्य जन तक उनका संदेश पहुँचा।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

संत काव्य परंपरा में अभिव्यक्त संघर्ष-चेतना के विविध आयामों की पहचान और विश्लेषण करना। यह संघर्ष धार्मिक, सामाजिक,